November 2018

Bulletin of Sri Aurobindo International Centre of Education

श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र पत्रिका

(हिन्दी-विभाग)

नवम्बर २०१८

श्रीअरविन्द आश्रम
पॉण्डिचेरी, भारत

बुलेटिन नवम्बर २०१८

विषय-सूची

राष्ट्रीय शिक्षण पद्धति (५, ६)	श्रीअरविन्द	३
जयन्तीलाल के साथ पत्र-व्यवहार	श्रीमाँ	८
युवा भारत को आह्वान	श्रीअरविन्द	२०
हमारे विद्यालय का लक्ष्य	श्रीमाँ	२१
नैशनल कॉलेज के विद्यार्थियों को परामर्श	श्रीअरविन्द	२४
भारतीय शिक्षा के आधारभूत प्रश्न	श्रीमाँ	२५
श्रीअरविन्द के उत्तर (७०)		२७

राष्ट्रीय शिक्षण पद्धति

(५)

इन्द्रियों का प्रशिक्षण

छः इन्द्रियाँ हमारे ज्ञान की सेवा करती हैं : दर्शन, श्रोत्र, घ्राण, स्पर्श, रस और मन। इनमें से अन्तिम को छोड़ कर बाक़ी सब बाहर की ओर देखती हैं और भौतिक स्नायुओं के द्वारा अपने भौतिक करण आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा के द्वारा बाहर से विचार-सामग्री इकट्ठा करती हैं। अध्यापक के पहले कार्यों में से एक है विचार के सहायकों के रूप में इन इन्द्रियों की पूर्णता की ओर पूरा ध्यान देना। हमें यह जानना चाहिये कि इन्द्रियों की यथार्थता और संवेदनशीलता में बाधा देने वाली चीज़ों को पहचानें ताकि उन्हें दूर करने के लिए अच्छे-से-अच्छे क़दम उठाये जा सकें। जो पूर्णता लाना चाहते हैं उन्हें अपूर्णता के कारणों को समझना चाहिये।

इन्द्रियाँ अपनी यथार्थता और संवेदनशीलता के लिए अपनी सूचनाओं की वाहक—स्नायुओं की बेरोक-टोक क्रियाशीलता पर और ग्रहण करने वाले मन की निष्क्रिय ग्रहणशीलता पर निर्भर रहती हैं। अपने-आपमें शरीर के अवयव अपना काम पूरी तरह करते हैं। आँख ठीक रूप बतलाती है, कान ठीक ध्वनि, जिह्वा ठीक रस, त्वचा ठीक स्पर्श और नाक ठीक गन्ध को ग्रहण करते हैं। अगर हम आँख को निर्णायक उदाहरण मान लें और उसकी क्रिया का अच्छी तरह अध्ययन करें तो बात आसानी से समझ में आ जाती है। दृष्टि-पटल पर अपने-आप ठीक बिम्ब बन जाता है, अगर उसका ठीक मूल्यांकन करने में भूल हो तो भूल अवयव की नहीं, किसी और चीज़ की होगी।

भूल स्नायु-तरंगों की हो सकती है। स्नायुएँ वाहिका से बढ़ कर कुछ नहीं हैं। उनमें अवयव की दी गयी सूचना को बदलने की क्षमता नहीं होती। लेकिन वाहिका में रुकावट आ सकती है और यह रुकावट सूचना की पूर्णता या शुद्धि में गड़बड़ कर सकती है। अवयव तक तो सूचना यान्त्रिक रूप से पूर्ण होती है लेकिन मन तक पहुँचते-पहुँचते गड़बड़ हो सकती है। इसमें केवल एक अपवाद होता है, जब यन्त्र-रूपी अवयव में ही दोष हो। और यह शिक्षक का नहीं, चिकित्सक का क्षेत्र है।

अगर रुकावट ऐसी हो जो सूचना को मन तक पहुँचने से ही रोक दे तो परिणामस्वरूप इन्द्रियों की संवेदनशीलता अपर्याप्त रह जाती है। देखने, सुनने, सूँघने, छूने, रस लेने या संज्ञाहीनता की अलग-अलग अवस्थाएँ—यदि चोट या स्वयं अवयव के दोष के कारण न हों—ठीक की जा सकती हैं। इसका इलाज बहुत सरल है और विभिन्न कारणों और उद्देश्यों से यूरोप में लोकप्रिय होता जा रहा है। वह है प्राणायाम। यह पद्धति अनिवार्य रूप से वाहिकाओं

की सम्पूर्ण और बाधारहित गति को फिर से ले आती है। अगर ठीक तरह से अभ्यास किया जाये तो यह इन्द्रियों की गति को तेज़ कर सकता है। योग की परिभाषा में इसी को "नाड़ी-शुद्धि" कहते हैं।

वाहिका में ऐसी रुकावट हो सकती है जो किसी भी अवस्था में पूरी तरह तो न रोके पर सूचनाओं को विकृत कर दे। इसका एक सुपरिचित उदाहरण है संवेदन-क्रिया पर भय का प्रभाव। चौंका हुआ घोड़ा सड़क पर पड़े बोरे को कोई जीवित जन्तु मान लेता है, मनुष्य रज्जु को साँप या झूलते हुए परदे को भूत का आकार मान लेता है। स्नायु-मण्डल की क्रियाओं के द्वारा होने वाली सभी विकृतियों की जड़ स्नायु-वाहिकाओं में होने वाली किसी भावना की उथल-पुथल में होती है। इसका एकमात्र उपाय है स्थिरता की आदत, स्नायुओं की अभ्यासगत स्थिरता। यह चीज़ नाड़ी-शुद्धि से भी आ सकती है जिससे सारा संस्थान स्थिरता पाता है, आन्तरिक प्रक्रियाएँ शान्त-स्थिर हो जाती हैं और मन की शुद्धि की तैयारी होती है।

अगर स्नायु-वाहिकाएँ शान्त और परिष्कृत हों तो सूचना की गड़बड़ केवल मन से या मन के द्वारा आ सकती है। अब यहाँ मानस या छठी इन्द्रिय अपने-आप स्नायुओं की तरह एक वाहिका है, बुद्धि के साथ सम्पर्क के लिए वाहिका है। गड़बड़ ऊपर से हो सकती है या नीचे से। बाहर की सूचना का पहले तो छोर के अवयव पर चित्र बनता है और तब स्नायुमण्डल के दूसरे छोर, चित्त या निष्क्रिय स्मृति में उसकी प्रतिकृति तैयार होती है। दृष्टि, श्रुति, घ्राण, स्पर्श, रस के सभी बिम्ब वहाँ जमा होते हैं और मानस उनकी सूचना बुद्धि को देता है। मानस इन्द्रिय भी है और वाहिका भी। इन्द्रिय के नाते वह भी औरों की तरह यन्त्रवत् रूप में पूर्ण है, वाहिका के रूप में उसमें रुकावट या विकृति के कारण गड़बड़ हो सकती है।

इन्द्रिय के रूप में मन बाहर से और अन्दर से सीधे विचार-संस्कार पाता है। ये संस्कार अपने-आपमें बिलकुल ठीक होते हैं परन्तु बुद्धि को अपनी सूचना देते-देते हो सकता है कि ये वहाँ तक पहुँचें ही नहीं या इतने विकृत होकर पहुँचें कि इनके द्वारा ग़लत या कुछ अंशों में ग़लत संस्कार पहुँच जायें। गड़बड़ उन संस्कारों पर असर डाल सकती है जो आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा की सूचना के साथ आते हैं, लेकिन यहाँ उसमें बहुत कम शक्ति होती है। सीधे मन के संस्कारों के बारे में वह बहुत ज़्यादा बलवान् और साथ ही भ्रान्ति का मुख्य स्रोत होती है। मन मुख्य रूप से विचार का सीधा संस्कार लेता है, लेकिन साथ ही रूप, शब्द, उन सभी चीज़ों का संस्कार लेता है जिनके लिए प्रायः वह इन्द्रियों पर निर्भर रहता है। इस संवेदनशीलता के पूर्ण विकास को हमारे यहाँ योग की भाषा में सूक्ष्म दृष्टि कहते हैं। पारेन्द्रिय ज्ञान (टेलीपेथी), अतीन्द्रिय दर्शन, अतीन्द्रिय श्रवण, पूर्व-बोध, पर-विचार-ज्ञान, चरित्र-ज्ञान आदि बहुत-सी नयी विद्याएँ और खोजें मन की पुरानी क्षमताएँ हैं जिन्हें अविकसित छोड़ दिया गया है। ये सब मन की शक्तियाँ हैं। मानव प्रशिक्षण में कभी छठी ज्ञानेन्द्रिय के विकास को कोई स्थान नहीं मिला। भावी युग में निस्सन्देह उसे मानव यन्त्र के लिए आवश्यक प्राथमिक प्रशिक्षण में स्थान मिलेगा। इस बीच इस बात का कोई कारण नहीं कि मन को बुद्धि के आगे

ठीक-ठीक विवरण रखने की शिक्षा क्यों न दी जाये ताकि हमारा विचार भले सम्पूर्ण संस्कार न सही, बिलकुल ठीक संस्कारों से प्रारम्भ कर सके।

पहली बाधा है स्नायविक भावुकता। हम यह मान सकते हैं कि यह स्नायु-मण्डल की शुद्धि से दूर की जा सकती है। दूसरी बाधा, स्वयं भाव ही आते हुए संस्कार को टेढ़ा-मेढ़ा कर दें। प्रेम ऐसा कर सकता है, घृणा ऐसा कर सकती है, कोई भाव या कामना अपनी शक्ति और तीव्रता के अनुसार आते हुए संस्कार को विकृत कर सकती है। यह कठिनाई केवल भावों के संयम और नैतिक आदतों की शुद्धि से दूर की जा सकती है। यह नैतिक प्रशिक्षण का अंग है और अभी के लिए हम इस पर विचार करना स्थगित रख सकते हैं। अगली कठिनाई है चित्त में बने हुए पहले के सम्बन्धों और साहचर्य से आने वाले हस्तक्षेप। चीज़ों को देखने की हमारी एक अभ्यासगत विधि है और हमारी प्रकृति का रुढ़िवादी तमस् हमें इस बात के लिए प्रवृत्त करता है कि हम हर नयी अनुभूति को वैसा रूप और सादृश्य दे लें जिसके हम अभ्यस्त हैं। केवल अधिक विकसित मन ही पहले संस्कार को नूतन अनुभूति की नूतनता के विरुद्ध निश्चेतन पूर्वाग्रह के बिना ग्रहण कर सकता है। उदाहरण के लिए, अगर हम जो कुछ हो रहा है उसका सच्चा संस्कार पायें—और साधारणतः हम ऐसे सच्चे या झूठे संस्कारों के आधार पर ही काम करने के अभ्यस्त हैं—और वह हमारे प्रकाशित रूप से भिन्न है तो चित्त में उपस्थित पूर्व साहचर्य उससे जा मिलता है और बुद्धि के पास एक बदला हुआ विवरण भेज देता है जिसमें या तो नये संस्कार पर पुराने की एक परत आ जाती है और उसे छिपा लेती है या पुराना नये में घुल-मिल जाता है। इस विषय में और आगे जाने का मतलब होगा मनोविज्ञान के ब्योरों की गहराई में जाना। यह एक प्रतिनिधि उदाहरण ही काफ़ी है। चित्त-शुद्धि या मानसिक और नैतिक आदतों की शुद्धि के बिना इस बाधा से पिण्ड छुड़ाना असम्भव है। यह योग की प्रारम्भिक क्रिया है और हमारी प्राचीन पद्धति में कई तरीक़ों से की जाती थी, परन्तु आधुनिक शिक्षा-पद्धति में इसे कोई स्थान नहीं मिलेगा।

अतः यह स्पष्ट है कि जब तक हम अपनी प्राचीन भारतीय पद्धति के कुछ सिद्धान्तों की ओर वापिस न जायें तब तक हमें बाधाओं के इस मूल को अपने अन्दर रहने देना होगा। एक सच्ची राष्ट्रीय शिक्षण-पद्धति अपने-आपको इतने अधिक महत्त्वपूर्ण विषय में यूरोपीय विचारों के अधिकार में न छोड़ेगी। और एक ऐसा सरल और महत्त्वपूर्ण उपाय है जिसके द्वारा इसे हमारी पद्धति का अंग बनाया जा सकता है।

और यह उपाय है हमारे संकल्प और हमारे वश के बाहर, हमारी निष्क्रिय स्मृति में से अपने ही संवेग द्वारा उठने वाले विचार-संवेदनों की लगातार बाढ़ में निष्क्रियता लाना। यह निष्क्रियता बुद्धि को पुराने साहचर्य और झूठे संस्कारों की कारा से मुक्त करती है। इससे उसे वह शक्ति मिलती है जिससे वह निष्क्रिय स्मृति के भण्डार से केवल वही चीज़ चुने जिसकी ज़रूरत है। इससे अपने-आप सम्यक् संस्कार पाने की आदत बनती है और तब बुद्धि चित्त को आदेश दे सकती है कि कौन-से संस्कार या साहचर्य बनाये या रद्द किये जायें। बुद्धि का

वास्तविक कार्य है विवेक, चुनाव, चयन, व्यवस्थापना; लेकिन जब तक चित्त-शुद्धि न हो तब तक अपना काम पूरा करने की जगह चित्त स्वयं अधूरा और भ्रष्ट रहता है और मिथ्या निर्णय, मिथ्या कल्पना, मिथ्या स्मृति, मिथ्या तुलना और मिथ्या सादृश्य, मिथ्या निगमन, आगमन और निष्कर्ष के द्वारा मन की वाहिका की उलझन को और भी बढ़ा देता है। बुद्धि की मुक्ति, शुद्धि और सम्यक् कार्य के लिए चित्त-शुद्धि आवश्यक है।

(६)

अभ्यास से इन्द्रियों का विकास

ज्ञान बटोरने में इन्द्रियों की अक्षमता का एक और कारण है उनका अपर्याप्त उपयोग। हम पर्याप्त अवलोकन नहीं करते या पर्याप्त ध्यान और एकाग्रता के साथ अवलोकन नहीं करते और कोई रूप, शब्द, गन्ध, यहाँ तक कि स्पर्श और रस भी प्रवेश पाने के लिए द्वार खटखटाते रह जाते हैं। निश्चय ही ग्रहण करने वाले यन्त्र की यह तामसिक अकर्मण्यता बुद्धि की उपेक्षा के कारण आती है और इसलिए ऐसा लगता है कि इस विषय को बुद्धि की क्षमताओं के प्रशिक्षण के साथ आना चाहिये, भले मनोविज्ञान की दृष्टि से यह कम ठीक हो। इसे यहीं देखते चलना हमारे लिए ज़्यादा सुविधाजनक है। विद्यार्थी को अपने चारों ओर के दृश्यों, शब्दों आदि को आसानी से पकड़ सकना, उनमें भेद कर सकना, उनके गुणों, उनकी प्रकृति और उनके मूल को जान कर उन्हें चित्त में प्रतिष्ठित कर सकना चाहिये ताकि स्मृति जब भी बुलाये वे हमेशा प्रत्युत्तर देने के लिए तैयार रह सकें।

यह एक तथ्य है और इसे सूक्ष्म परीक्षणों के द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि इन्द्रियों और स्मृति के उपयोग में लापरवाही के कारण अवलोकन की क्षमता का बहुत अधूरे ढंग से विकास हुआ है। बारह आदमियों को यह काम सौंपो कि वे दो घण्टे पहले देखी हुई किसी चीज़ का स्मृति के आधार पर वर्णन लिखें। उन सबके वर्णन एक-दूसरे से और वास्तविक घटना से बहुत भिन्न होंगे। हम इस अपूर्णता से पिण्ड छुड़ा लें तो भ्रान्ति को दूर करने के मार्ग पर काफ़ी आगे बढ़ जायेंगे। यह इन्द्रियों के द्वारा अपना काम पूर्णता के साथ करने से हो सकता है। अगर उन्हें यह मालूम हो कि बुद्धि उनसे इस प्रकार काम करवाना चाहती है और स्मृति में तथ्यों को अपने उचित स्थान पर बिठाने के लिए उचित ध्यान देती है तो इन्द्रियाँ काफ़ी तत्परता के साथ ठीक-ठीक काम कर सकती हैं।

मनोयोग ज्ञान का एक ऐसा तत्त्व है जिसके महत्त्व को हमेशा मान्यता दी गयी है। सम्यक् स्मृति और यथार्थता के लिए मनोयोग पहली अवस्था है। विद्यार्थी जो कर रहा है उसे दत्तचित्त हो करे, यह उसके लिए अनुशासन का पहला तत्त्व है। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, अगर मनोयोग के विषय को रुचिकर बनाया जाये तो उसे प्राप्त करना आसान है। एक ही विषय पर ध्यान देने

का नाम है एकाग्रता। लेकिन लोग प्रायः एक बात भूल जाते हैं, कई बार एक ही समय अनेक विषयों पर एकाग्र होना अनिवार्य हो जाता है। जब लोग एकाग्रता की बात करते हैं तो उनका मतलब होता है मन को एक समय में एक ही विषय पर केन्द्रित करना। लेकिन दो विषयों पर, तीन विषयों पर, अनेक विषयों पर एकाग्र होने की शक्ति विकसित करना बिलकुल सम्भव है। जब अमुक घटना घटती है तो वह एक ही समय होने वाली अनेक घटनाओं या एक साथ होने वाली अनेक स्थितियों से मिल कर बनती है, किसी दृश्य, किसी शब्द, किसी स्पर्श या अनेक दृश्यों, शब्दों, स्पर्शों से मिल कर बनती है जो एक ही समय में या बहुत थोड़े समय में साथ-ही-साथ इकट्ठी हो गयी हों। मन की साधारण वृत्ति है कि वह किसी एक चीज़ को पकड़ लेता है और बाक़ी को अस्पष्ट रूप से देखता है या बिलकुल नहीं देखता। यदि वह सबकी ओर ध्यान देने के लिए बाधित हो तो वह अन्यमनस्क या उद्विग्न हो उठता है और किसी चीज़ पर पूरी तरह ध्यान नहीं देता। लेकिन इसका इलाज किया जा सकता है और मनोयोग को अमुक परिस्थितियों में इस तरह बराबर-बराबर बाँटा जा सकता है कि हर एक का अवलोकन भली-भाँति किया जा सके और उसे याद रखा जा सके। यह केवल अभ्यास की बात है।

यह भी बहुत वाञ्छनीय है कि हाथ आँख के विविध कार्य-कलाप के बारे में यथार्थता रखने के लिए उसकी सहायता करने आ जाये। यह उपयोग इतना स्पष्ट और अत्यन्त आवश्यक है कि उस पर विस्तार से लिखने की ज़रूरत नहीं। आँख से देखी हुई चीज़ की हाथ से नक़ल करने की आदत मन की भूलों और ग़लतियों को पकड़ने और जो कुछ देखा है उसे ठीक-ठीक अंकित कर लेने के लिए ज़रूरी है। हाथ से की गयी नक़ल अवलोकन की यथार्थता को निश्चित कर देती है। आलेखन का यह पहला उपयोग है और यह अपने-आपमें इन्द्रियों के प्रशिक्षण के लिए एक ज़रूरी विषय बना देने के लिए काफ़ी है।

—श्रीअरविन्द

जयन्तीलाल के साथ पत्र-व्यवहार

(२१ जून १९१३ में जन्मे, गुजराती शिष्य—जयन्तीलाल पारिख—दिसम्बर १९३८ में २५ साल की उम्र में आश्रम में रहने के लिए आ गये थे। ये एक प्रतिभासम्पन्न चित्रकार थे, जिन्होंने आश्रम में अपने निवास के पहले दशक में माताजी के मार्गदर्शन में सैकड़ों चित्र और रेखांकन बनाये थे। उसके बाद लगभग ५० वर्षों तक उन्होंने आश्रम-प्रेस में काम किया। १९७० के प्रारम्भ में उन्होंने श्रीअरविन्द-जन्म-शताब्दी के ३० खण्डों के प्रकाशन में पूरा सहयोग दिया और १९७३ में 'आश्रम-आर्काइव्ज़ एण्ड रिसर्च लाइब्रेरी' की स्थापना भी की। वे आश्रम में ६० वर्षों तक रहे। उनका देहावसान ८५ वर्ष की उम्र में २६ जनवरी १९९९ को हुआ।

१९३६ से १९७० के दौरान उनका पत्र-व्यवहार माताजी के साथ अंग्रेज़ी में हुआ।)

माँ,

मैं आपकी राय के लिए कला की कुछ पुस्तकें भेज रहा हूँ। मैं सेज़ान और वैन गॉग के बारे में आपकी राय जानना चाहता हूँ क्योंकि आधुनिक आलोचकों ने उन्हें बहुत सराहा है, विशेषकर सेज़ान को। अंग्रेज़ी का बहुत अच्छा समालोचक 'रॉजर फ़्राइ' तो उसे दिव्य कलाकार कहता है, यानी वह अपने कुछ कामों में बहुत पूर्ण है।

जो किताबें तुमने भेजी हैं उनमें सेज़ान और वैन गॉग के चित्र बहुत सुन्दर हैं (विशेषकर सेज़ान के)। मैं एक या दो दिनों में उन्हें वापस कर दूँगी—मैं उन्हें ध्यान से देखना चाहती हूँ।

१२ मार्च १९३६

ऐसे लोग आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ने के योग्य होते हैं, लेकिन उनका रास्ता कभी ख़तरों से ख़ाली नहीं होता।

जिसे तुम ढूँढ़ते हो वह हमेशा तुम्हारे सामने प्रस्तुत रहता है। चैत्य को पूरी तरह विकसित होने दो और वह अपने-आप तुम्हें वहाँ ले जायेगा जिसकी तुम अभीप्सा कर रहे हो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१५ फ़रवरी १९३९

माँ,

भागवत कृपा का मूल आधार क्या है? क्या दिव्य माँ अपनी कृपा लिये उन लोगों के लिए हमेशा तैयार खड़ी नहीं रहतीं जो उन्हें नीचे बुलाते हैं?

हाँ।

क्या यह सच नहीं है कि भगवान् को ढूँढ़ने वाले अधिकतर जिज्ञासु दिव्य कृपा को नीचे नहीं बुला सकते, यद्यपि वे उसे ग्रहण कर सकते हैं, अगर किसी गुरु या अवतार ने एक बार उसे अपने अन्दर उतार लिया हो?

हाँ।

क्या हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भागवत कृपा पार्थिव चेतना में सुस्थिर हो जाने पर ही सर्वश्रेष्ठ रूप से काम करती है? उसे स्थायी रूप से स्थापित करना ही क्या आपके उद्यम का उद्देश्य है?

हाँ।

कृपया मुझे पूरा सिद्धान्त समझाइये।

भागवत कृपा को शब्दों और मानसिक सूत्रों द्वारा नहीं समझाया जा सकता।
आशीर्वाद। ७ अप्रैल १९३९

अगर तुम चित्र बनाने के लिए सच्ची प्रेरणा का अनुभव नहीं करते तो मैं यह आवश्यक नहीं समझती कि तुम चित्रकारी करो।
आशीर्वाद। अप्रैल १९३९

माँ,

पिछले कुछ दिनों से मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि मुझे किसी काम में एकाग्र होना चाहिये। मैं चित्रकारी करना और रेखाचित्र बनाना चाहता हूँ इसलिए मैंने हर रोज़ इस काम के लिए कुछ समय निकालने का निश्चय किया है। बाक़ी का समय अध्ययन को समर्पित करने का इरादा है। आप मुझे जो भी काम देंगी उसे करने के लिए मैं हमेशा तैयार रहूँगा।

तुमने जो चित्र बना कर भेजा है वह बहुत सुन्दर है। यह बहुत अच्छा है कि तुमने रेखांकन और चित्रकारी करना फिर से शुरू कर दिया। मुझे जब कभी किसी काम के लिए तुम्हारी ज़रूरत होगी मैं तुमसे कहूँगी।
आशीर्वाद।

१२ मई १९३९

तुम 'लेक' जा सकते हो। मुझे तुम्हारे रेखांकन बहुत अच्छे लगे, कुछ तो अत्यधिक सुन्दर हैं।

अगर मैं भूल जाऊँ तो आज दोपहर को मुझे जेब-ख़र्च के बारे में याद दिलाना।

आशीर्वाद।

१ जून १९३९

जयन्ती,

कला के नज़दीक पहुँचने का तुम्हारा रास्ता सही है और अगर तुम अपनी मनोवृत्ति और प्रयास में पूर्ण सच्चाई बनाये रखोगे तो तुम निश्चित रूप से सफल होओगे।

पूर्वी कला की सराहना में तुम कुछ हद तक सही हो, लेकिन वह अधूरी है। बहरहाल इस विषय को हम अभी यहीं छोड़ दें क्योंकि अभी यह सब समझाने के लिए मेरे पास समय नहीं है। रही बात लिओनार्दो द विंची, माइकेल एंजेलो और रफ़ायल की तो मैं उन्हें एक ही स्तर पर नहीं बिठा सकती। पहले दो अन्तिम से कहीं अधिक महान् हैं। वे दोनों सृजनात्मक शक्ति के जगत् से जुड़े हैं, लिओनार्दो अधिक सूक्ष्म रूप में और उसकी कृतियों में है अचञ्चल, गभीर दृष्टि और शुद्धि, जब कि माइकेल एंजेलो में अधिक शक्ति और बल है, विशेषकर उसकी मूर्ति-कलाओं में, जो अद्वितीय रूप से भव्य हैं। रफ़ायल की कृतियाँ अधिक मानसिक और सतही हैं।

आशीर्वाद।

३० जून १९३९

> *पिछली रात, जब मैं सोने जा रहा था तो हृदय से ऊपर का मेरे शरीर का हिस्सा किसी ऊर्जा से भरा हुआ था। मैंने बिना कुछ किये सिर्फ़ अवलोकन किया। यह बस कुछ सेकेंड रहा। ऐसा मेरे साथ दो-तीन बार हुआ है और तब यह अनुभव कुछ मिनटों तक चला था। क्या यह कुण्डलिनी शक्ति का अनुभव था? इस तरह के दबाव के समय हमारा सबसे अच्छा मनोभाव क्या होना चाहिये?*

सबसे अच्छी मनोवृत्ति है, शान्त और अचञ्चल बने रहना और अनुभूति को अपना रास्ता तय करने देना, **उसके बारे में सोचे बिना** बस उसका अवलोकन करना।

आशीर्वाद।

७ जुलाई १९३९

> *'स' ने मुझसे कहा कि आपने ध्यान-कक्ष सजाने की अनुमति दे दी है। मेरा इरादा सिर्फ़ उस कमरे को सजाना था जिसमें आप प्रणाम के लिए बैठा करती थीं, लेकिन*

मैंने सुना कि आप पूरा कक्ष और सीढ़ियों तक का पूरा रास्ता करवाना चाहती हैं। यह बहुत बड़ी योजना है। परन्तु 'क' यह काम करना चाहता है और अगर 'स' से पूछा जाये तो वह भी इसमें जुड़ना चाहेगा।

मैं बस आपसे यह कहना चाहूँगा कि काम को पूरी सामञ्जस्यता और शान्ति से करने के लिए केवल एक ही व्यक्ति को सारी व्यवस्था करनी चाहिये, अन्य सभी को उसी के अनुसार चलना चाहिये। मैं जानना चाहूँगा कि आपके मन में इस सारी चीज़ के लिए क्या कोई विषय है और यह भी कि काम को किस तरह किया जाये।

मैं इससे सहमत हूँ कि सिर्फ़ एक ही व्यक्ति को पूरा नक़्शा बनाना चाहिये, दूसरे बस उसके कार्यान्वयन में मदद दे सकते हैं।

मेरे पास कोई विषय या योजना नहीं है। मेरी सिर्फ़ यही इच्छा है कि रंग और योजना की दृष्टि से सजावट **शान्त** होनी चाहिये।

कुछ ख़ाके और योजनाएँ बना कर मुझे भेजो।

आशीर्वाद।

१ जुलाई १९३९

माँ,

ध्यान के लिए अभी मैं जितना समय दे रहा हूँ उससे ज़्यादा देना क्या मेरे लिए ठीक रहेगा? सुबह और शाम मिला कर मैं क़रीब दो घण्टे ध्यान में बिताता हूँ। मैं अब तक ध्यान करने में पूरी तरह सफल नहीं हुआ हूँ। मेरा भौतिक मन मुझे बहुत बाधा देता है। यह देखना कितना दुःखदायी है कि मन तो पागल मशीन की तरह काम कर रहा है और हृदय पत्थर की न्याईं सो रहा है। माँ, वर दीजिये कि मैं हमेशा अपने हृदय में आपकी उपस्थिति का अनुभव करूँ।

ध्यान का समय बढ़ाने से इतनी ज़्यादा मदद नहीं मिलती जब तक कि ध्यान करने की प्रेरणा अन्दर से स्वाभाविक रूप से न उठे—उसे मन के किसी अस्थिर निश्चय से नहीं उठना चाहिये।

मेरी सहायता, प्रेम और आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

१७ अक्तूबर १९३९

माँ,

मैंने अपने रिश्तेदारों के लिए जो मकान लिया है वह किसी क्षयरोगी का है। मकान के लिए पैसे दे देने के बाद मुझे इसके बारे में पता चला। परन्तु बाद में हमने पूरे मकान को धोया और कुछ कमरों में गन्धक जलाया। बहरहाल, यह विचार

मुझे तंग नहीं करता कि यहाँ क्षयरोगी रह चुका है क्योंकि क़रीब छह महीने पहले वह वहाँ से निकल चुका था। लेकिन चूँकि कुछ लोगों को इसके बारे में पता चल गया और बीमारी के सुझाव वहाँ फेंके जा चुके हैं अतः, वहाँ रहने वालों की रक्षा के लिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ।

चूँकि पूरे मकान को अच्छी तरह से साफ़ और रोगाणुमुक्त कर दिया गया है अतः एकदम से कोई ख़तरा नहीं है। लोगों को डरने की ज़रूरत नहीं है।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

१९ फ़रवरी १९४०

माँ,

मैं सजावट के काम में समय देना चाहता हूँ, लेकिन इससे पहले मैं सारी चीज़ को अच्छी तरह समझना चाहता हूँ। क्या आप मुझे बता सकती हैं कि इस विषय पर कैसे ध्यान किया जाये? देवदूत कौन हैं? विश्व में उनका कार्य क्या है? हम उनके सम्पर्क में कैसे आ सकते हैं? क्या ऐसी किताबें हैं जो फ़रिश्तों के उद्‌गम के बारे में बता सकें?

तुम्हारे प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर देना असम्भव है।

मुझे ऐसी किसी किताब के बारे में पता नहीं जो इस विषय के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें बता सके।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद।

२ जून १९४०

मेरे ख़याल से तुम्हारा केवल चित्रकारी पर ही एकाग्र होना अधिक अच्छा होगा क्योंकि तुम पहले से ही इस दिशा में कुछ अच्छी प्रगति कर चुके हो।

दूसरों के साथ खाना खाते समय का वातावरण अगर तुम्हें पसन्द नहीं है तो मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हें ऐसा क्यों करना चाहिये।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

१३ सितम्बर १९४०

माँ,

मेरे माता-पिता मुझसे कई बार जेब-ख़र्च के लिए कुछ रुपये रखने के लिए कहते हैं, लेकिन मैं इनकार करता रहा हूँ क्योंकि मैं उन्हें यह अनुभव नहीं कराना

चाहता कि मैं यहाँ किसी चीज़ के अभाव में कष्ट पा रहा हूँ। क्या आप सोचती हैं कि सामान्य ख़र्च के लिए अपने पास कुछ रुपये रखना मेरे लिए वाञ्छनीय रहेगा?

तुम जेब-ख़र्च के लिए कुछ रुपये रख सकते हो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद।

२५ सितम्बर १९४०

माँ,

ऐसा लगता है कि डॉ. 'अ' ने आश्रम के चित्रकारों को जिंजी के क़िले में ले जाने की इच्छा प्रकट की है। मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि मैं जाने के लिए उत्सुक नहीं हूँ, मेरे अन्दर इसकी कोई कामना ही नहीं है। मैं हमेशा वही करना चाहता हूँ जो आपको पसन्द हो, इसलिए कृपया मैं आपकी राय जानना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि आप अपनी राय बिना संकोच और हिचकिचाहट के प्रकट करें। मेरे लिए अपनी किसी कामना को सन्तुष्ट करने की अपेक्षा आपकी इच्छा को पूरा करना और आपका कहा मानना कहीं अधिक आनन्द की बात होगी।

तुम्हारा न जाना ज़्यादा अच्छा है, इस तरह की सैर आध्यात्मिक जीवन के लिए ज़्यादा हितकर नहीं होती।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२४ दिसम्बर १९४०

माँ,

कई बार मैं गम्भीरता से इसके बारे में सोचता हूँ कि मेरी सत्ता क्या चाहती है। मैं भला उस सच्ची सत्ता का अनुभव क्यों नहीं करता जिसके अन्दर सत्ता और सम्भवन का आनन्द होता है? मैं किसी भी सर्जनात्मक कार्य में सच्ची रुचि का अनुभव क्यों नहीं करता? कभी-कभी मैं हृदय की ऐसी ललक का अनुभव करता हूँ कि किसी ऐसी चीज़ को पकड़ लूँ जो सचमुच मेरी सत्ता को सन्तुष्ट कर सके, लेकिन यह ललक ज़्यादा देर तक नहीं टिकती। आपके विचार से मेरी सच्ची सत्ता को क्या चाहिये?

परम प्रभु।

मैं ऐसा भी अनुभव करता हूँ कि आप मुझसे पूरी तरह से सन्तुष्ट नहीं हैं।

ऐसी कोई बात नहीं है। हर एक की अपनी मुश्किलें होती हैं और मैं प्रत्येक को उसकी मुश्किलों में से बाहर निकालने में उसकी मदद करने के लिए यहाँ हूँ।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद।

२५ फ़रवरी १९४२

माँ,

शायद मेरे पत्र का उत्तर देने के लिए आपको समय नहीं मिला। आज आपकी दृष्टि में ऐसा कुछ था जिसकी मैं थाह नहीं ले पाया; उसमें डाँट का-सा भाव था। अगर ऐसा है तो मेरी समझ में नहीं आ रहा कि इसके पीछे क्या कारण हो सकता है।

डाँटने वाली कोई बात नहीं है। मुझे जो सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तर लगा उसे मैंने 'न' के द्वारा भेजा और मैं तुम्हारी स्वीकृति की आशा कर रही थी—उसी कारण वह दृष्टि हो।

मैं यह भी जोड़ दूँ कि सभी मानव सम्बन्धों में हमेशा इस प्रकार के प्राणिक आकर्षणों और आवेगों का आवरण रहता है, जिसके नीचे छिपी रह सकती है वह चैत्य क्रिया जिसके बारे में व्यक्ति हमेशा बहुत सचेतन नहीं होता।

आशीर्वाद। ११ जनवरी १९४४

माँ,

पिछले तीन दिनों से मैं जब प्रणाम के लिए आता हूँ तो आपकी आँखों का भाव नहीं पढ़ पाता। मुझे लगता है कि आप मुझसे नाख़ुश हैं। शायद यह मेरी भूल हो, लेकिन अगर ऐसा कुछ है तो कृपया मुझे बतलायें।

मैं तुम्हारे प्रति अपनी मनोवृत्ति के किसी बदलाव के बारे में अभिज्ञ नहीं हूँ और न ही बदलाव का कोई कारण देखती हूँ। मैं बस इतना ही कह सकती हूँ कि जब तुम आये तो मैं 'स' के बारे में सोच रही थी और सोच रही थी कि तुम्हें इस मामले के बारे में कितनी जानकारी है? रही बात तुमसे नाख़ुश होने की, तो इसका कहीं कोई लक्षण नहीं दीखता और मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि **मैं नाख़ुश नहीं हूँ**।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

५ सितम्बर १९४५

माँ,

मेरे पिताजी चाहते हैं कि कुछ दिनों के लिए मैं उनसे मिल कर आ जाऊँ। वे अपंग हैं, शय्याधीन हैं। उनके दोनों पैर काठ-जैसे हो रहे हैं और धीरे-धीरे हाथ

भी वैसे ही होते जा रहे हैं। मुझे लग रहा है कि शायद अब वे कुछ महीनों के ही मेहमान हैं। अपनी माँ के समय भी मुझे उनकी आसन्न मृत्यु का ज़बरदस्त आभास हो गया था। मैं अपने पिता के प्रति बहुत कृतज्ञ हूँ। वे मेरे लिए आदर्श पिता साबित हुए। उन्होंने मुझे जीवन में अच्छे-से-अच्छा दिया—बदले में कुछ भी माँगे बिना।

जब मैं आपके पास यहाँ आया तो मैंने सोचा था कि माता-पिता के देहान्त के पहले मैं एक बार उनसे मिलने जरूर जाऊँगा—बस उनको सन्तुष्ट करने के लिए। न मैं जाने के लिए लालायित हूँ न व्यग्र, और नहीं जाने पर कोई मुझसे प्रश्न भी न करेगा, लेकिन उपर्युक्त विचार बार-बार मुझे धकेल रहा है। मैं आपकी इच्छा का पालन करने में बहुत प्रसन्न होऊँगा।

तुम अपने पिता को देखने जा सकते हो—लेकिन मैं चाहूँगी कि तुम विद्यालय का सत्र समाप्त होने के बाद जाओ, यानी दूसरी दिसम्बर के बाद और विद्यालय खुलने से पहले, यानी पहली जनवरी से पहले वापिस आ जाओ—जिससे पढ़ाई की अवहेलना न हो।

१९४६

मेरी प्यारी माँ,

मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने आपको नाख़ुश किया। उसका कोई भी कारण क्यों न हो, लेकिन मैं बहुत क्षमाप्रार्थी हूँ। मुझे इसके बारे में बहुत बुरा लग रहा है। आपके प्रति अपने बढ़ते स्नेह के बारे में तो कहने की आवश्यकता नहीं है।

मेरे प्यारे बालक,

दुःखी न होओ और चिन्ता न करो—**मैं ज़रा भी नाख़ुश नहीं हूँ**। जो हलकी-फुलकी बातचीत प्रतीत होती है, दूसरे शायद उससे कुछ क्षुब्ध हुए हों, लेकिन मैं तुम्हें इसका ज़िम्मेवार बिलकुल नहीं ठहराती। आश्रम में उन बहुत-सी चीज़ों के बारे में लोगों की सतही रूप में और बिना सोचे-समझे बोलने की आदत है जो लोगों की सामान्य समझ के बाहर होती हैं। सफलता के साथ ऐसे प्रभाव का प्रतिरोध करने के लिए बहुत अधिक साहस और सहिष्णुता की आवश्यकता होती है। बहरहाल, मुझे आशा है कि यह बल, साहस और सहिष्णुता सभी सद्भावनावाले लोगों में विकसित होगी। इस बीच मेरे प्रेम और आशीर्वाद सबके साथ हैं।

निश्चित रहो कि मैं तुम्हारे अन्दर के बढ़ते प्रेम और बढ़ती भक्ति से पूरी तरह अभिज्ञ हूँ और उन्हें उनकी आशा के अनुरूप पूरा-पूरा प्रत्युत्तर मिलेगा।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित। २२ सितम्बर १९४७

माँ,

मैं ऐसे स्थल पर पहुँच गया हूँ जहाँ लगता है कि मैं कुछ नहीं समझ पा रहा। जहाँ तक शब्दों का सवाल है उन्हें तो मैं भली-भाँति समझ पाता हूँ, लेकिन मेरे अन्दर कमी है 'वास्तविकता' के भाव की, एक परम शक्तिशाली 'सत्ता' और दिग्दर्शन के भाव की। किसी भी तरह से यह सुखद स्थिति बिलकुल नहीं है।

तुमने यह सब मुझसे कल रात दस और ग्यारह के बीच कहा था और चूँकि तुम विक्षुब्ध-से थे इसलिए मैंने तुमसे कहा, "सबसे पहले **तुम्हें अचञ्चल होना चाहिये**।" सारी चीज़ बहुत स्पष्ट थी और मैं तुम्हारी विचार-शक्ति की सराहना करती हूँ—लेकिन **अचञ्चल** और **शान्त** रहने की आवश्यकता पर ज़ोर देती हूँ। **यह अनिवार्य है**।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ।

२१ जून १९६२

माँ,

'क्ष' का कहना है कि वह किसी ऐसे को नहीं जानता जो प्रदर्शनी का काम कर सके। वह सभी प्रदर्शनकर्ताओं के पास यह सूचना भिजवाना चाहता है कि प्रदर्शनी रद्द हो गयी।

मुझे इसका बहुत खेद है।

परिस्थितियों की अपेक्षा यह **परम इच्छा** की **हार** है और इससे आश्रम की अपकीर्ति होती है।

आशीर्वाद। १४ फ़रवरी १९६३

माँ,

वर दीजिये कि दिव्य माँ मुझे आवश्यक शक्ति दें ताकि मेरी निम्नलिखित प्रार्थना प्रभावकारी हो सके।

श्रीअरविन्द और श्रीमाँ का पुत्र होने के नाते, मेरी अधिकाधिक रुचि सत्य में है। वर दे कि मेरी प्रकृति के अन्दर छिपा हुआ गर्व का पहाड़ किसी भी भाँति इस परम सत्य—भव्य सूर्य—की क्रियाओं को विकृत न करे। मुझे तुच्छता से ऊपर उठा।

आंशिक दृष्टि समग्र के दर्शन को छिपा न दे, और एक पग का ब्योरा 'लक्ष्य' की एकाग्रता में बाधक न बने।

१४ मई १९६३

माँ,

जगत् जैसा है हमें उन्हीं परिस्थितियों में काम करना होगा। फिर भला हम प्राप्त परिस्थितियों का उपयोग कर, उनमें बल एकत्र कर, भागवत परम इच्छा को उसकी शुद्धि में अभिव्यक्त करने का प्रयास क्यों न करें?

लेकिन धरती पर जीने का अर्थ ही है कि हम "प्राप्त परिस्थितियों का उपयोग कर रहे हैं", अन्यथा जीना असम्भव हो जाता।

आशीर्वाद।

१८ मार्च १९६५

माँ,

ये रहे कलकत्ते से आये कुछ चित्रों के प्रूफ़। ये बहुत अच्छे नहीं हैं। मैं कुछ संशोधन की माँग कर रहा हूँ। कुछ और चित्र कलकत्ते भेजने बाक़ी हैं। क्या मैं 'प' से उन्हें ले जाने के लिए कह सकता हूँ?

ये प्रूफ़ **अच्छे नहीं हैं**। तुम उनसे और क्यों करवाना चाहते हो? वे लोग तो सिर्फ़ काम ख़राब कर रहे हैं और इसमें समय और पैसे की बहुत बरबादी हो रही है। प्रायः ये सभी चित्र अव्यवहार्य हैं और इन्हें दुबारा बनाना होगा।

उन्हें और अधिक काम देने के तुम्हारे विचार से मैं सहमत नहीं हो सकती।

आशीर्वाद।

१२ जनवरी १९६६

कई दिनों से मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि मुझे अपनी बाहरी गतिविधियों को कम करके अपने-आपको किसी ऐसे शान्त काम में सीमित कर लेना चाहिये जिसमें इतनी अधिक भाग-दौड़ न करनी पड़े।

मैं आन्तरिक संकट से गुज़र रहा हूँ। मेरा जीवन लक्ष्यहीन बनता जा रहा है। एक दुराग्रही सपना बार-बार मुझे अपनी अयोग्यता का संकेत दे रहा है। यह बहुत आवश्यक हो गया है कि मैं आन्तरिक स्थिरता और धैर्य प्राप्त करूँ। अन्धकार और जड़ निष्क्रियता को कम होना चाहिये।

अगर माँ अनुमति दें तो मैं मुद्रणालय के काम से मुक्त होना चाहूँगा। बहरहाल, मैं वही करूँगा जैसा माँ कहेंगी। कृपया मेरा मार्ग-दर्शन करें।

अगर तुम मुद्रणालय का काम छोड़ दोगे तो काम बरबाद हो जायेगा! जैसे ही मेरे पास थोड़ा-

सा भी ख़ाली समय होगा मैं सवेरे तुम्हें बुला लूँगी और हम इस विषय पर बातचीत कर लेंगे।

जैसे-जैसे मैं बढ़ती हूँ वैसे-वैसे मैं अधिकाधिक यह जानती हूँ कि काम के द्वारा ही श्रीअरविन्द का सर्वांगीण योग **सर्वोत्तम रूप से किया जाता है**।

प्रेम और आशीर्वाद।

९ अक्तूबर १९६६

माँ,

मेरा मन बहुत विक्षुब्ध है। मैं नहीं जानता कि मैं कहाँ खड़ा हूँ। हमने जो काम लिया है वह बहुत बड़ा है, हम कई मामलों में वचनबद्ध हैं। मुझे जो करना है वह मेरे लिए स्पष्ट नहीं है, न आन्तरिक रूप से और न बाहरी परिस्थितियों में। रोज़-रोज़ निश्चय बदले जाते हैं, नये-नये प्रश्न उभरते हैं, अहंकार को अस्वीकार्य परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

मैं माँ से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे तब तक मुद्रणालय के कार्य से मुक्त रखें जब तक मुझे कोई स्पष्ट मार्गदर्शन या अपने काम के बारे में माताजी के निश्चित निर्देशन न मिलें।

यह मेरा व्यक्तिगत संकटकाल है। लोगों के साथ मेरा कोई झगड़ा या उनसे कोई शिकायत नहीं है। मैं अपना मुँह बन्द रख कर प्रतीक्षा कर रहा हूँ और मैं प्रकाश के उस सन्देश को पढ़ना चाहता हूँ जो मेरे सम्मुख प्रकट होगा। मैं माँ के प्रकाश के लिए प्रार्थना करता हूँ।

कितना अच्छा होता अगर तुम इससे प्रभावित न होते और अपना काम जारी रखते। अब जब कि कितना काम पड़ा है और सभी के सहयोग की नितान्त आवश्यकता है।

अगर तुम मुझसे मिलना चाहो तो मैं तुमसे मिल कर बहुत प्रसन्न होऊँगी, लेकिन तुम जानते ही हो कि मैं कभी अकेली नहीं होती और बात करना मुश्किल हो जाता है।

बहरहाल, निश्चिन्त रहो कि मेरा प्रेम और आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

७ अगस्त १९६९

माँ,

मैं एक व्यक्तिगत समस्या का सामना कर रहा हूँ और माँ के पथ-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना करता हूँ। अभी तक मुझे आन्तरिक पथ-प्रदर्शन का सहारा नहीं मिला है। मेरे दिन अच्छी तरह नहीं बीत रहे हैं। मैं शताब्दी-कार्य में जुटा हुआ हूँ यद्यपि मुझे ऐसा लगता है कि न तो मैं वहाँ वाञ्छित हूँ और न ही कोई मुझ पर विश्वास करता है, लेकिन मैं किसी भी सामान्य विचार या भावना से प्रेरित होकर आगे

> *नहीं बढ़ना चाहता। कभी-कभी मेरी एकदम से एकान्त में रहने की इच्छा होती है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरे अन्दर वह निश्चिति जागे कि मैं वही कर रहा हूँ जो मेरे गुरु चाहते हैं। वर दीजिये कि मेरी व्यक्तिगत पसन्द, नापसन्द और अहंकार मेरी क्रिया और वचन की शुद्धि पर दाग न लगायें। 'माँ' है मेरा मन्त्र और मैं उन्हीं की शरण में दुबका हूँ।*

शताब्दी के कार्य के लिए न केवल तुम्हारी आवश्यकता है बल्कि तुम **अनिवार्य** हो, तुम्हारे बिना यह काम सुचारु रूप से न होगा। अतः मैं तुमसे धीरज धरने और रास्ते में आने वाली कठिनाइयों को बहुत महत्त्व न देने के लिए कह रही हूँ।

प्रेम और आशीर्वाद।

३ मई १९७०

> *मुझे बहुत खेद है कि मेरी ऐसी छवि बन गयी है कि मैं वहाँ से पैसे खींच रहा हूँ जहाँ उसे जाना चाहिये—यानी माताजी के पास जाने वाले पैसों को मैं अपने काम के लिए खींच रहा हूँ। मेरी मनोवृत्ति तो यही रही है कि सारी सम्पत्ति माताजी की है और हमें उनके निर्देशन के अनुसार उसका उपयोग करना चाहिये। जहाँ कहीं सम्भव हो मैं यही करता हूँ और मुझे दुःख है कि इससे मेरी उलटी ही छवि बन रही है। मैं अपने सिर से भार उतारने के लिए आपको यह लिख रहा हूँ।*

मुझे मालूम नहीं, यह अफ़वाह किसने उड़ायी, लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूँ कि मैं जानती हूँ कि यह सच नहीं है। अतः, चिन्ता न करो और शान्ति को अपने हृदय में प्रतिष्ठित होने दो।

आशीर्वाद के साथ।

बिना तारीख़ का पत्र

—श्रीमाँ

युवा भारत को आह्वान

हमारा आदर्श वह आध्यात्मिकता नहीं है जो जीवन का त्याग करती है, बल्कि हमारा आदर्श आत्मा की शक्ति से जीवन पर विजय है। यह भगवान् को अभिव्यक्त करने के प्रयत्न के रूप में जगत् को स्वीकार करती है। साथ ही इस अभिव्यक्ति के लिए जितना प्रयत्न अब तक हो चुका है उससे अधिक बड़े प्रयत्न के द्वारा इसे मानवजाति का रूपान्तर भी करना है; इस अभिव्यक्ति में मनुष्य और भगवान् के बीच का आवरण हट जायेगा। जिस दिव्य मानवता को हम प्राप्त कर सकते हैं वह अब अपना नया जन्म लेगी और हमारा अपना जीवन भी आत्मा के सत्य, प्रकाश और सामर्थ्य में नये सिरे से ढाला जायेगा। इस आध्यात्मिकता का अर्थ है कि हमारा समस्त कर्म हमारे कर्म के स्वामी के प्रति एक उत्सर्ग होगा, मनुष्य में महत्तर आत्मा की अभिव्यक्ति होगी और यह समस्त जीवन को योग का रूप दे देगा।...

हम तरुण भारत का आवाहन करते हैं। तरुण ही नये जगत् के निर्माता होंगे, वे नहीं जो पश्चिम के प्रतियोगितापूर्ण व्यक्तिवाद, पूँजीवाद अथवा जड़वादी साम्यवाद को भारत का भावी आदर्श मानते हैं, वे भी नहीं जो पुराने धार्मिक सूत्रों के अन्ध अनुयायी हैं और जो आत्मा द्वारा जीवन की स्वीकृति और रूपान्तर में विश्वास नहीं कर सकते। केवल वे ही नये जगत् का निर्माण करेंगे जो मुक्त मन और हृदय से एक पूर्णतर सत्य को अंगीकार करेंगे तथा एक महत्तर आदर्श के लिए कार्य करेंगे। ऐसे लोगों की निष्ठा अपने-आपको भूतकाल या वर्तमान के प्रति उत्सर्ग न करके भविष्य के प्रति उत्सर्ग करने की होगी। उन्हें अपने जीवन को इन बातों के प्रति उत्सर्ग करना होगा: अपनी निम्नतर सत्ता को अतिक्रम करना, अपने अन्दर और सभी मनुष्यों के अन्दर भगवान् को चरितार्थ करना और राष्ट्र एवं मानवजाति के हित के लिए पूर्ण भाव से अथक परिश्रम करना। यह आदर्श अभी तक एक बीज के रूप में ही विद्यमान हो सकता है और जो जीवन उसे धारण करता है वह एक छोटा-सा केन्द्र-बिन्दु है, किन्तु यह हमारी दृढ़ आशा है कि यह बीज एक दिन एक बड़ा वृक्ष बन जायेगा और यह केन्द्र-बिन्दु उत्तरोत्तर विस्तार को प्राप्त होता हुआ रचना का हृदय बन जायेगा। अपनी प्रेरक आत्मा में यह भरोसा रखते हुए हम नयी मानवजाति के आदर्श वाहकों में अपना स्थान प्राप्त करेंगे, उस मानवजाति के जो विघटित होते हुए जगत् तथा भविष्य के भारत की अव्यवस्था में जन्म लेने के लिए छटपटा रही है, यह तब भारत का वह पुनर्जन्म होगा जो प्राचीन भारतमाता के जर्जर पर महान् कलेवर को नवयौवन प्रदान करेगा।

१५ अगस्त १९२० —श्रीअरविन्द

हमारे विद्यालय का लक्ष्य

मधुर माँ,

वर दे कि हम अभी और हमेशा के लिए बस तेरे नन्हें-मुन्ने बच्चे बने रहें।[१]

२ दिसम्बर १९४३

*

हमें वह वीर योद्धा बना जो बनने के लिए हम अभीप्सा करते हैं। वर दे कि हम डटे रहने का प्रयास करने वाले भूत के विरुद्ध, सफलतापूर्वक उस भविष्य का युद्ध लड़ सकें जो अभी जन्म लेने को है, ताकि नयी चीज़ें अभिव्यक्त हो सकें और हम उन्हें ग्रहण करने-योग्य बनें।[२]

६ जनवरी १९५२

*

हमारे शिक्षाकेन्द्र का असली उद्देश्य और लक्ष्य क्या है? क्या श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ाना? केवल यही? सभी ग्रन्थ या उनमें से कुछ? या हमें विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना है कि वे माताजी और श्रीअरविन्द के ग्रन्थ पढ़ सकें? हमें उन्हें आश्रम-जीवन के लिए तैयार करना है या "बाहरी" काम के लिए भी? इस बारे में बहुत सारे मत हवा में चक्कर लगा रहे हैं और वे पुराने लोग जिनसे हम यह आशा करते हैं कि वे जानते होंगे, वे भी बहुत-सी अलग-अलग बातें कहते हैं, समझ में नहीं आता कि किस पर विश्वास किया जाये और तदनुसार काम किया जाये। किसी निश्चित और वास्तविक ज्ञान के बिना हम किस आधार पर काम करें? माताजी, मैं आपसे मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना करता हूँ।

यह इन ग्रन्थों या अन्य ग्रन्थों को पढ़ने के लिए तैयार करने का सवाल नहीं है। सवाल है उन सबको जो इसके योग्य हों, साधारण मानव विचार, भाव और क्रिया की रूढ़ि में से खींचने का; जो यहाँ हैं उन सबको अपने अन्दर से मानव विचार और क्रिया-पद्धति की दासता को निकाल फेंकने के अवसर देना। जो छात्र सुनना चाहते हैं उन सबको यह सिखाना है कि जीने का एक अन्य एवं अधिक सच्चा मार्ग है, कि श्रीअरविन्द ने हमें बताया है कि किस प्रकार जिया जा सकता और **सत्य सत्ता** बना जा सकता है—और यह कि यहाँ की शिक्षा बच्चों को **उस जीवन** के लिए तैयार करने और उसके योग्य बनाने के लिए है।

---

[१] २ दिसम्बर १९४३ के आस-पास आश्रम-विद्यालय के उद्घाटन के समय विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी प्रार्थना।

[२] 'श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र' के उद्घाटन के समय यह प्रार्थना दी गयी थी।

बाक़ी सबके लिए, मानवीय ढंग से सोचने और जीने के लिए संसार बहुत विशाल है और वहाँ सबके लिए जगह है।

हम संख्या नहीं, एक चयन चाहते हैं; हम प्रखर विद्यार्थी नहीं, सजीव आत्माएँ चाहते हैं।

अगस्त १९६०

*

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को जीवन में और समाज में सफलता के लिए तैयार करना नहीं है, बल्कि उसकी वर्धनीयता को उसके चरम तक बढ़ाना है।

*

सफलता को लक्ष्य न बनाओ। हमारा लक्ष्य है पूर्णता। याद रखो तुम **नये जगत्** की देहली पर हो, उसके जन्म में भाग ले रहे हो और उसके सृजन में सहायक हो। रूपान्तर से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ भी नहीं है। इससे अधिक मूल्यवान् कोई अभिरुचि नहीं है।

*

हम यहाँ वही करने के लिए नहीं हैं जो अन्य लोग करते हैं (भले उससे थोड़ा अच्छा ही क्यों न हो)।

हम यहाँ वह करने के लिए हैं जो अन्य लोग **नहीं कर सकते**, क्योंकि उन्हें यह ख़याल ही नहीं है कि यह किया जा सकता है।

हम यहाँ 'भविष्य' के बच्चों के लिए 'भविष्य' का मार्ग खोलने के लिए हैं। और कोई चीज़ कष्ट उठाने-लायक नहीं है और श्रीअरविन्द की सहायता के योग्य नहीं है।

६ सितम्बर १९६१

*

हम यहाँ एक सरल और आरामदेह जीवन बिताने के लिए नहीं हैं। हम यहाँ भगवान् को पाने के लिए, भगवान् बनने के लिए, भगवान् को अभिव्यक्त करने के लिए हैं।

हमारा क्या होता है यह भगवान् की चिन्ता का विषय है, हमारी चिन्ता का नहीं।

हमारी अपेक्षा भगवान् ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि जगत् की प्रगति के लिए और हमारी प्रगति के लिए क्या अच्छा है।

२३ अगस्त १९६७

*

तुम एक अच्छे अध्यापक हो परन्तु बच्चों के साथ तुम्हारा व्यवहार आपत्तिजनक है।

बच्चों को प्रेम और मृदुता के वातावरण में शिक्षा देनी चाहिये।

मार-पीट नहीं, कभी नहीं।

डाँट-डपट नहीं, कभी नहीं।

हमेशा मृदु सहृदयता, और अध्यापक को उन गुणों का **जीता-जागता उदाहरण** होना चाहिये जिन्हें बच्चों को प्राप्त करना है।

बच्चों को विद्यालय जाते हुए **ख़ुश** होना चाहिये, सीखते हुए **ख़ुश** होना चाहिये, और अध्यापक को उनका सबसे अच्छा मित्र होना चाहिये जो उनके आगे उन गुणों का उदाहरण रखता है जो उन्हें प्राप्त करने चाहियें।

और यह सब ऐकान्तिक रूप से अध्यापक पर निर्भर करता है। इस पर कि वह क्या करता है और कैसे व्यवहार करता है।

*

ज़बरदस्ती करना न तो शिक्षा का श्रेष्ठ सिद्धान्त है, न ही सबसे अधिक प्रभावशाली।

सच्ची शिक्षा तो उस चीज़ को **उजागर करना है** जो विकसित होते हुए बच्चों में पहले से ही विद्यमान है। जिस तरह फूल सूर्य के प्रकाश में खिलते हैं, उसी तरह बच्चे आनन्द में खिलते हैं। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि आनन्द का मतलब कमज़ोरी, अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता नहीं है। बल्कि एक भासमान सुजनता है जो अच्छे को प्रोत्साहन देती है और बुरे पर कठोरता से आग्रह नहीं करती।

'कृपा' हमेशा न्याय की अपेक्षा 'सत्य' के ज़्यादा नज़दीक होती है।

जनवरी १९६१
—श्रीमाँ

नैशनल कॉलेज के विद्यार्थियों को परामर्श

मैं इस समय तुम्हें जो एकमात्र परामर्श दे सकता हूँ वह यह है—कार्य को आगे बढ़ाओ, जिस उद्देश्य से इस कॉलेज की स्थापना हुई थी उसे पूरा करो। मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि अब तक तुम सब इस उद्देश्य के अर्थ को समझ गये होगे। जब हमने इस कॉलेज की स्थापना की थी, जब हमने अपने अन्य सब कार्यों एवं जीवन की अन्य सम्भावनाओं को छोड़ कर अपने-आपको इस संस्था को अर्पित किया था तो वह इसलिए कि हमने इसमें एक राष्ट्र की, एक नवीन भारत की नींव को, उसके केन्द्रीय बिन्दु को देखने की आशा की थी—उस भारत की जो दुःख और संकट की इस रात्रि के बाद अपना नया जीवन आरम्भ करने वाला है, वह दिन गौरवपूर्ण और महान् होगा जब भारत संसार के लिए कार्य करेगा। यहाँ हम तुम्हें बस थोड़ी-सी जानकारी ही नहीं देना चाहते, न तुम्हें केवल अपनी आजीविका के साधन सिखाना चाहते हैं बल्कि हम मातृभूमि के सपूतों को तैयार करना चाहते हैं जो उसके लिए काम कर सकें, कष्ट उठा सकें। इसीलिए हमने इस कॉलेज की स्थापना की थी और भविष्य में मैं तुम सबको इस काम में लगा हुआ देखना चाहता हूँ।...

राष्ट्र के इतिहास में ऐसा समय भी आता है जब भगवान् उसके आगे एक कार्य, एक लक्ष्य रख देते हैं, एक ऐसा कार्य और लक्ष्य जिसके लिए सब कुछ, चाहे वह कितना भी ऊँचा और महान् क्यों न हो, बलिदान कर देना पड़ता है। और अब हमारी मातृभूमि के लिए ऐसा समय आ गया है, जब उसकी सेवा से बढ़ कर कोई चीज़ प्रिय नहीं है, जब हमें हर चीज़ को उसी उद्देश्य की प्राप्ति में लगा देना चाहिये। यदि तुम पढ़ते हो तो उसके लिए पढ़ो, अपने तन, मन और आत्मा को उसी की सेवा के लिए प्रशिक्षित करो। जीविका भी इसीलिए कमाओ कि तुम उसके लिए जी सको। विदेश भी जाओ तो उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जिससे तुम उसकी सेवा कर सको। काम करो ताकि वह समृद्ध हो सके। कष्ट सहन करो ताकि वह प्रसन्न हो सके। इस एक ही परामर्श में सब कुछ आ जाता है। तुमसे मेरी अन्तिम बात यह है कि यदि तुम्हें मुझसे सहानुभूति है तो मैं उसे केवल व्यक्तिगत भावना के रूप में नहीं, उस कार्य के लिए सहानुभूति के रूप में देखने की आशा करता हूँ जिसे मैं कर रहा हूँ। मैं इस सहानुभूति को कार्य में अनूदित होते हुए देखना चाहता हूँ, ताकि भविष्य में, जब मैं तुम्हारे गौरवपूर्ण कार्य-काल को देखूँ तो मैं गर्व से याद कर सकूँ कि मैंने इसे शुरू करने के लिए और इसकी तैयारी के लिए कुछ किया था।

२३ अगस्त १९०७ —श्रीअरविन्द

भारतीय शिक्षा के आधारभूत प्रश्न[1]

(१) भारत के वर्तमान और भावी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की दृष्टि से, भारत की शिक्षा में किस चीज़ को अपना लक्ष्य बनाना चाहिये?

अपने बालकों को मिथ्यात्व के त्याग और 'सत्य' की अभिव्यक्ति के लिए तैयार करना।

(२) किन उपायों से देश इस महान् लक्ष्य को चरितार्थ कर सकता है? इस दिशा में आरम्भ कैसे किया जाये?

भौतिक को 'आत्मा' की अभिव्यक्ति के लिए तैयार करके।

(३) भारत की सच्ची प्रतिभा क्या है और उसकी नियति क्या है?

जगत् को यह सिखाना कि भौतिक तब तक मिथ्या और अशक्त है जब तक वह 'आत्मा' की अभिव्यक्ति न बन जाये।

(४) माताजी भारत में 'विज्ञान' और 'प्रौद्योगिकी' को प्रगति को किस दृष्टि से देखती हैं? मनुष्य के अन्दर 'आत्मा' के विकास में वे क्या कर सकते हैं?

इसका एकमात्र उपयोग है, भौतिक आधार को 'आत्मा' की अभिव्यक्ति के लिए अधिक सशक्त, अधिक पूर्ण और अधिक समर्थ बनाना।

(५) देश राष्ट्रीय एकता के लिए काफ़ी चिन्तित है। माताजी इसे कैसे देखती हैं? भारत अपने तथा जगत् के प्रति अपने उत्तरदायित्व को कैसे पूरा करेगा?

सभी देशों की एकता जगत् की अवश्यम्भावी नियति है। लेकिन सभी देशों की एकता के सम्भव होने के लिए पहले हर देश को अपनी एकता चरितार्थ करनी होगी।

(६) भाषा की समस्या भारत को काफी तंग करती है। इस मामले में हमारा उचित मनोभाव क्या होना चाहिये?

---

[1] १ अगस्त १९६५ में भारत सरकार का शिक्षा-आयोग आश्रम के 'शिक्षा-केन्द्र' की शिक्षा-पद्धति का निरीक्षण करने के लिए पॉण्डिचेरी आया था। उस समय कुछ अध्यापकों ने माताजी से ये प्रश्न पूछे थे।

एकता एक जीवित तथ्य होना चाहिये, मनमाने नियमों के द्वारा आरोपित वस्तु नहीं। जब भारत एक होगा तो सहज रूप से उसकी एक भाषा होगी जिसे सब समझ सकेंगे।

> *(७) शिक्षा सामान्यतः साक्षरता और एक सामाजिक स्तर की चीज़ बन गयी है। क्या यह हानिकर वृत्ति नहीं है? लेकिन शिक्षा को उसका आन्तरिक मूल्य और उसका मूलभूत आनन्द कैसे प्रदान किया जाये?*

परम्पराओं से बाहर निकल कर और अन्तरात्मा के विकास पर ज़ोर देकर।

> *(८) आज हमारी शिक्षा कौन-से दोषों और भ्रान्तियों का शिकार है? हम उनसे कैसे बच सकते हैं?*

(क) सफलता, आजीविका और धन को दिया जाने वाला लगभग ऐकान्तिक महत्त्व।
(ख) 'आत्मा' के साथ सम्पर्क स्थापित करके और सत्ता के 'सत्य' के विकास और उसकी अभिव्यक्ति की परम आवश्यकता पर ज़ोर देकर।

५ अगस्त १९६५
—श्रीमाँ

श्रीअरविन्द के उत्तर

(७०)

अब मैंने तीन कार्य हाथ में लिये हैं, इनसे एक तो मानवता की सहायता करने का मुझे सन्तोष मिलेगा या फिर मैं अपनी ऊर्जा के अतिरेक का उपयोग कर सकूँगा: 'न' के साथ श्रीमाँ की कृतियों का अध्ययन करना, 'प' और 'ल' के लिए 'ह' की कविताओं का अनुवाद करना, और बोलचाल की फ़्रेंच में रोज़ एक पुरज़े पर 'स' को दो वाक्य लिख कर देना। क्या मुझे यह सब बन्द कर देना चाहिये?

मेरे ख़याल से जब तक तुम्हारे अन्दर इनको करने की इच्छा रहे, तब तक इनमें से किसी को भी रोकने की कोई आवश्यकता नहीं है।

किसी-किसी के स्वभाव में लोगों की सहायता करने का सहज भाव होता है, जैसा कि मेरा, 'स' या 'अ' का है। हर एक बिना पूर्ण सामर्थ्य और ज्ञान के, अपनी तरह से इस कोशिश में जुटा रहता है। लेकिन यह मानवता की सेवा करने की कामना का ही शेषांश है जो इस क्षेत्र में अपने-आपको छोटे तरीक़ों द्वारा व्यक्त करने में लगी रहती है, और शायद यह चीज़ व्यक्ति के अहंकार को एक तरह की सन्तुष्टि प्रदान करती है, हालाँकि इससे कोई ठोस काम तो होता नहीं है।

भौतिक स्वभाव में सम्पूर्ण चेतना तथा शक्ति के आगमन से ही ठोसपन और पूर्ण सन्तुष्टि आ सकते हैं।

आज सवेरे जागने पर कल की ही तरह समान चीज़ हुई, हालाँकि उसकी तीव्रता कम थी। मैंने अपना ध्यान उससे हटाने की कोशिश की, लेकिन कुछ समय बाद कामुक-संवेदन वापस आ गया। उसके बाद सारे दिन शुष्कता और उदासी रही। दोपहर को मेरा मन पिछले महीने 'स' के साथ हुए सम्पर्क की स्मृति में भटक गया। मुझे याद आया कि किस तरह उसने मेरे प्राण को आकर्षित करने का प्रयास किया था और यह चाहा था कि मैं केवल उसी पर ध्यान दूँ। ये स्मृतियाँ भी कामुक-संवेदना ले आयीं, ख़ासकर जब उसको स्पर्श करने की स्मृति जागी।

मेरे ख़याल से यह पिछले हफ़्ते की प्राणिक गतियों का बचा हुआ अंश है और इसे जल्दी ही ग़ायब हो जाना चाहिये। इसके लिए अपने संकल्प का प्रयोग करो।

> *प्रणाम के समय मैंने श्रीमाँ को अन्तर्मुखी और अपने से दूर पाया। तब से मैं यहाँ से चले जाने की सोच रहा हूँ। मैं यहाँ के जीवन से थक गया हूँ, यहाँ कोई उद्धारक चीज़ भी नहीं दीखती। साथ ही, मुझे अपने काम में भी रस नहीं आ रहा और न ही यहाँ कोई ऐसी चीज़ है जिसके लिए मैं कह सकूँ कि मुझे यहाँ रहना चाहिये, हाँ, शायद बस एक चीज़ यह हो सकती है कि मेरा शरीर बाहरी जीवन की उन तकलीफ़ों से घबराता हो जो यहाँ से चले जाने के बाद मुझे झेलनी पड़ेंगी।*

श्रीमाँ तुमसे दूर नहीं थीं और इसका कोई कारण भी नहीं था—यहाँ से चले जाने के लिए ऐसे-ऐसे कारणों को नहीं रखा जा सकता! यह प्राणिक-भौतिक की वह भावना है जिसे सक्रिय होने से रोक दिया गया है और जो अभी तक उच्चतर चेतना के साथ अपना सम्पर्क नहीं बना पायी है... मुझे पता नहीं कि तुम बाहरी जीवन में कितना रस और सन्तोष पा लोगे और उसके लिए इस जीवन को छोड़ कर चला जाना कितना सार्थक होगा। डटे रहना बेहतर होगा।
१० जनवरी १९३५

> *दो दिन पहले मुझे अपनी ग़लत क्रिया से बड़ी जुगुप्सा हुई, मेरे अन्दर कोई अन्तर ही नहीं आया है। मुझे ऐसा लगता है कि आपको लिखने से मेरे अन्दर घनिष्ठता का ग़लत भाव, बहुधा माँग, दर्प और अहंकार का भाव जाग रहा है; घनिष्ठता का तो मैं लायक ही नहीं हूँ। मैंने यह भी देखा कि मेरे अन्दर का वह भाग, जो उस दिन यहाँ से चले जाने पर उतारू हो गया था, उसमें भगवान् को स्वीकार करने की कोई मंशा ही नहीं है—इसके विपरीत, वह उनसे घृणा करता है। इन सब विचारों के रहते हुए मैंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मैं अपना पुनरावलोकन करूँगा और तब तक आपको पत्र नहीं लिखूँगा जब तक इस सबसे किसी अच्छी चीज़ को उभरते नहीं देख लेता।*
>
> *और साथ ही, ये हिस्से जो मुझ पर इतने हावी हो जाते हैं, इन्हें पहले की अपेक्षा अधिक कड़ी निगरानी और अनुशासन में रखना होगा। इन्हें अपनी सनक को पूरा करने के लिए, बेहतर हिस्सों की स्वाधीनता और हर्ष पर क़ब्ज़ा करने की अनुमति बिलकुल नहीं मिलनी चाहिये। इसलिए मैं रोज़ आपको पत्र लिखने और सवेरे श्रीमाँ के दर्शन करने के इस सौभाग्य से अपने-आपको तब तक के लिए वञ्चित कर रहा हूँ जब तक कि मैं सचमुच इसके योग्य नहीं बन जाता और प्राणिक-भौतिक का मूलभूत प्रतिरोध "प्रसन्न और सहायक समर्पण" में नहीं बदल जाता। पहली तारीख़ से मैं इस कड़े अनुशासन में रहने में जुटा था, लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा कि कैसे ग्यारह तारीख़ को यह प्रतिरोध अचानक इस निश्चय के साथ उछल पड़ा कि चूँकि श्रीमाँ मुझे देख कर नहीं मुस्कुरायीं, मैं यहाँ से छोड़ कर चला*

> *जाऊँगा। इसलिए अपने अन्दर के इस भाग से मैं कह रहा हूँ कि अब माँ के साथ कोई घनिष्ठता नहीं होगी, और उसे माँ की मुस्कान के अभाव को झेलना पड़ेगा!*

वैसे घनिष्ठता तो व्यक्तिगत सम्बन्ध की बात है, योग्यता की तो नहीं। और रोज़ लिखने की बात आवश्यकता से उत्पन्न हुई थी। लेकिन सत्ता के इस भाग में हो रही हलचल से पिण्ड छुड़ाने का तुम्हारा संकल्प निश्चय ही सही है। मेरे ख़याल से प्रतिरोध का असली केन्द्र सेक्स की कठिनाई है, बाक़ी सभी चीज़ें उसी के आस-पास झुण्ड बनाये रहती हैं। मुझे लगता है कि अगर वह कठिनाई नहीं होती तो सच्ची चेतना का प्रवाह बना रहता और तब तुम बाक़ी सभी दिक्कतों से भी छुटकारा पा लेते।
१३ जनवरी १९३५

> *कल रात अचानक 'ज' मेरे पास आया और कहा कि उसने 'प' के साथ रिश्ता तोड़ दिया है। उसने इस विच्छेद के ब्योरे भी सुनाये। क्या 'ज' के साथ फिर से सम्बन्ध जोड़ना वाञ्छनीय होगा, क्योंकि लगता है कि वह चाहता है, या वह अब भी अपने सामने एक "दीवाल बनाये रखेगा" और मेरे ऊपर गुह्यविद्या द्वारा कार्य करेगा?*

'प' के साथ अधिकाधिक सम्बन्ध टूटने की बात उसने मुझे लिखी थी और यह भी कि ऐसा लगता है कि अब वह रिश्ता पूरी तरह से टूट रहा है। उसने लिखा कि वह बहुत अकेला और मित्रहीन अनुभव करता है। अब वह 'ड' और तुम्हारी तरफ़ मुड़ गया है। 'ड' ने भी मुझसे यह लिख कर पूछा था कि क्या 'ज' के साथ सम्पर्क बनाना उसके लिए परेशानी बन जायेगा? मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह पाया। 'ज' के अन्दर महान् क्षमताएँ हैं, लेकिन है वह अजीब ही लड़का, उसका मन बहुत ही सक्रिय है और उसका प्राण बहुत ही विक्षुब्ध और अभियानप्रिय। अगर वह योग में स्वयं को सही रूप में ढाल ले तो वह बहुत दूर तक जा सकता है। चूँकि उसे यह अकेलापन महसूस हो रहा है और उसने 'प' से अपना सम्बन्ध काट लिया है, शायद अब वह तुम्हारे और अपने बीच वह दीवाल न रखे। तुम उसके साथ दोबारा सम्पर्क साध सकते हो, लेकिन इस बार अधिक सावधानी के साथ, जब तक कि तुम यह न देख लो कि इन नयी अवस्थाओं में वह क्या रुख़ अपनाता है।
१४ जनवरी १९३५

> *'ज' ने कहा कि जैसे ही उसने 'प' के साथ सम्बन्ध काट दिया, उसके प्राण की लड़ी टूट गयी और अब उसे पता नहीं कि वह अपने प्राण को कहाँ टिकाये? क्या इसका यह अर्थ हुआ कि दूसरों के साथ के सभी सम्बन्ध प्राणिक होते हैं? उदाहरण के लिए, जब मैं उन फ़्रेंच वाक्यों के बारे में सोचता हूँ जिन्हें मैं रोज*

> *'न' को लिख कर देता हूँ या जब मुझे उसके सामने कुछ पढ़ना होता है तो क्या इसका यह मतलब है कि उस दिशा में मैं अपना प्राण फेंकता हूँ? निश्चित रूप से, जब इस तरह की सक्रियता बन्द हो जाती है—चाहे वह तुमने अपनी इच्छा से की हो या सामने वाले ने की हो—तो व्यक्ति अशान्त हो ही जाता है—ज़्यादा तो तब जब सामने वाले ने सम्बन्ध तोड़ दिया हो। इस दृष्टिकोण से तो इसका यह अर्थ होगा कि अगर व्यक्ति एककेन्द्रित प्रगति चाहता है तो उसे सभी तरह के सम्पर्कों को छोड़ देना चाहिये।*

मेरे ख़याल से 'ज' ने ऐसा इसलिए अनुभव किया क्योंकि 'प' के साथ उसका सम्पर्क प्राण के द्वारा था—मानसिक भी था—लेकिन और किसी चीज़ से अधिक वह प्राणिक मन के द्वारा बनाया गया सम्पर्क था। वाक्य बनाना, पढ़ना इत्यादि अपने-आपमें केवल मानसिक सम्पर्क बनाते हैं, लेकिन प्राण अपने-आपको उनके पीछे रख सकता है। प्राणिक तत्त्व का चिह्न ही है—एक आसक्ति, आदान-प्रदान की आवश्यकता या खिंचाव, आकर्षण इत्यादि। स्वयं सम्पर्क नहीं, बल्कि प्राणिक खिंचाव आध्यात्मिक प्रगति में बाधा बन सकता है।

(साधक का प्रश्न अप्राप्य है, केवल श्रीमाँ का उत्तर दिया जा रहा है।)

यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका एकदम सटीक उत्तर नहीं दिया जा सकता क्योंकि इसके दोनों पहलुओं में सत्य है। भागवत 'कृपा' के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता, लेकिन 'कृपा' को पूरी तरह अभिव्यक्त होने के लिए साधक को अपने-आपको तैयार करना होगा। अगर प्रत्येक चीज़ भागवत हस्तक्षेप पर ही निर्भर रहे तब तो मनुष्य मात्र एक कठपुतली रह जायेगा और साधना की कोई आवश्यकता ही नहीं, तब न कोई शर्तें होंगी, न चीज़ों का कोई विधान—तब तो विश्व भी नहीं होगा, बस भगवान् अपनी मर्ज़ी-मुताबिक चीज़ों को इधर से उधर नचाते रहेंगे। निस्सन्देह, अन्तिम सहारे के रूप में तो सभी चीज़ों के लिए यही कहा जा सकता है कि सब कुछ भगवान् की वैश्व क्रिया है, लेकिन वह सारा कार्य व्यक्तियों के माध्यम से, शक्तियों द्वारा सम्पादित होता है और उसमें 'प्रकृति' की अवस्थाएँ भी सहायक होती हैं। विशेष हस्तक्षेप हो सकता है और होता भी है, लेकिन हर चीज़ में विशेष हस्तक्षेप नहीं हो सकता। जिस अनुभूति की तुम बात कर रहे हो वह सम्भवतः प्राणिक स्तर पर हुई हो और अनुभूति की इस तरह की आकस्मिकता और तीव्रता प्राण की ही विशेषताएँ हैं—लेकिन ये स्थायी नहीं होतीं, ये बस व्यक्ति को तैयार करती हैं। जब व्यक्ति मन, प्राण और शरीर के परे की चीज़ के साथ सम्पर्क साध लेता और सामान्य धरातल से ऊपर उठ जाता है, तभी सामान्यतः वह महान्, चिरस्थायी, मूलभूत उपलब्धियों को पाता है।
१४ जनवरी १९३५

> *एक सपने में मैंने कई पारसी महिलाओं और पुरुषों को देखा। वे मुझे घेर कर बैठ गये और मैंने उनको कुछ बुद्धिमत्तापूर्ण बातें बतायीं। उनमें से एक हिन्दू था जिस पर मैं विशेष ध्यान दे रहा था। वह मेरे ससुर जैसा था, लेकिन मेरा सामान्य मनोभाव अनासक्ति और श्रेष्ठता का था। वे सब ऊपर चले गये, फिर 'ड' किसी डॉक्टर की तलाश में आया, मैंने पूछा कि किसको चिकित्सा की ज़रूरत है, तो उसने मुझसे कहा कि उसका नाम शायद परब्रह्म है। मैंने सोचा कि परब्रह्म को तो किसी दवाई की आवश्यकता हो ही नहीं सकती, लेकिन उसका सचमुच मतलब किसी ऐसे से था जो 'ब' की तरह था, जिसका दिमाग़ कुछ चल सा गया था। कुल मिला कर, मैं उस सपने में सम्मिलित नहीं था।*

मेरे ख़याल से इस तरह के सपनों में व्यक्ति निम्न प्राणिक जगत् के किसी स्थान में चला जाता है (कभी-कभी सूक्ष्म भौतिक में) लेकिन याद रखने वाला मन वहाँ देखी गयी सत्ताओं को बहुधा परिचित नाम और शकलें दे देता है। साथ ही, साहचर्य द्वारा वहाँ की घटनाएँ भौतिक चीज़ों के साथ भी जुड़ जाती हैं।
१५ जनवरी १९३५

> *'ट' ने मुझे सूचना दी कि 'क'—गुजरात का मुख्य राजनैतिक प्रचारक—यहाँ आया हुआ है और स्थायी रूप से यहाँ रहने की सोच रहा है। मुझे उसमें कुछ दिलचस्पी थी क्योंकि उसे सुचिन्तक माना जाता है, वह संन्यासियों के साथ भी घूमा है और अच्छा लेखक है। मैंने उसके बारे में 'द' से बातचीत की जिसने मुझसे पूछा कि क्या वह उसके चित्रों की एलबम ख़रीदने के लिए इच्छुक होगा! चाहे गाँधी या मुसोलिनी या स्टैलिन ही यहाँ क्यों न आ जायें, 'ड' शायद सबसे पहले यही पूछेगा कि क्या वे उसके ग्राहक बन सकते हैं!*

वह सम्भवतः मुसोलिनी से अपने 'फ़ोटोग्राफ़ी के स्टूडिओ' के लिए पैसा माँगे जिसको शुरू करने की वह आये दिन रट लगाया करता है।

> *लेकिन किस तरीक़े से जाने-माने लोगों का आना इतना लाभप्रद और महत्त्वपूर्ण होता है कि वह ऐसी फड़फड़ाहट फैला दे, जैसा कि यहाँ हुआ? क्या यह इस बात का चिह्न है कि 'सत्य' फैल रहा है और क्या यह बाहर से अन्दर विकसित होने वाली सत्य की प्रगति का माप है?*

नहीं, बिलकुल नहीं। आध्यात्मिक दृष्टि से जाने-माने या अजाने लोगों की एकदम से कोई महत्ता

नहीं है। यह बस प्रचारक भावना है; लोग सोचते हैं और कहते हैं, "ओह, अगर 'क' आ जाये तो सारा गुजरात हमारा हो जायेगा"—मानों हम किसी दल के हों या किसी ऐसे गिरजे या धर्म के मतावलम्बी हों जो अपने अनुयायियों और धर्मप्रचारकों की खोज में जुटा हो। ऐसा व्यक्ति जो पूरी सच्चाई से योगाभ्यास कर रहा हो, हज़ारों प्रसिद्ध व्यक्तियों से अधिक मूल्यवान् है।

> *'ज' आज सवेरे मेरे पास आया और उसने 'प' के बारे में, आजकल की उसकी मनोवृत्ति के बारे में बातें कीं। ऐसा लगता है कि 'प' और उसके संगी-साथी 'ज' के बारे में बड़े आलोचनात्मक हो रहे हैं। 'प' 'ड' के पास गया और उसने 'ज' के बारे में पूछा, 'ज' ने यह बात जान ली और वह थोड़ा विक्षुब्ध हो गया।*

ऐसा लगता है कि *'प' ने 'ड' से 'ज' के विरोध में कुछ कहा, इसीलिए वह विक्षुब्ध हो गया।*

> *मैं अंग्रेज़ी से फ़्रेंच में अनुवाद के कुछ अभ्यास करना चाहूँगा। उनको जाँचना ज़रूरी होगा। 'व' हफ़्ते में एक बार मेरा काम जाँचता है और मुझे नहीं लगता कि वह और अधिक समय दे पायेगा। मैं क्या करूँ? अपनी कॉपी किसके पास भेजूँ? क्या 'प' यह कर पायेगा?*

श्रीमाँ : तुम अपनी कॉपी मुझे भेज सकते हो। मैं 'प' से संशोधन करवा लूँगी और एक निगाह ख़ुद भी डाल लूँगी।

> *एक सपने में मैं 'ट' और 'व' के पास खड़ा था। 'ट' मुझे कुछ दिखा रहा था और हम हँस रहे थे, लेकिन मैंने 'व' की तरफ़ नहीं देखा। फिर जब मैंने एक नज़र उस पर डाली, उसने मुझे एक मधुर मुस्कान दी और उससे बात तक नहीं करने का मुझ पर आरोप लगाया। मैंने उससे कहा, "बात एकदम उलटी है, तुम ही मुझसे बातें नहीं करतीं!" जब मैंने उससे यह कहा, मैंने देखा कि मेरी मासी के जैसा कोई मेरे पास खड़ा था। 'व' की मुस्कान से बचने के लिए मैंने तुरन्त अपने-आपको अन्दर समेट लिया। जागने पर मुझे पता था कि यह कोई ऐसी ऊर्जा थी जो मुझे प्राणिक कामुक-सम्पर्क की ओर नीचे खींचने की कोशिश कर रही थी और मैंने अपने-आपसे कहा, " 'व' या किसी और से मुस्कानों का कोई आदान-प्रदान अब नहीं। मैं उनकी परवाह नहीं करता क्योंकि यह चीज़ मुझे अशुद्धियों की ओर खदेड़ती है। अब अन्दर मुड़ो, ऊपर उठो, और केवल माँ का स्पर्श और स्मित पाओ।"*

हाँ, निश्चित रूप से, इस तरह के सपने स्पष्टतः निम्न प्राणिक 'ऊर्जा' से आते हैं। कभी ये

प्रलोभन के रूप में आते हैं तो कभी व्यक्ति को कसौटी पर कसने के लिए। यह अच्छा हुआ कि तुमने तुरन्त उसकी प्रकृति को ताड़ लिया।

> *... नौ बजे मैंने अपने-आपको 'च' के बारे में सोचते हुए पाया—कि मैं उसके साथ बातें कर रहा हूँ या उसके लिए कुछ कर रहा हूँ। जब मैं इस 'मूड' में था, 'फ़' मेरे पास 'च' की चिट्ठी के साथ आया कि मैं उसे वह पढ़ कर सुना दूँ। उसका वही विचार मुझ पर आ गया होगा।*

हाँ, निश्चित ही।

> *'द' ने अपनी फ़ोटो-एलबम मुझे देखने के लिए दी, लेकिन वह देखना मेरे लिए हानिकारक निकला। 'व' की फ़ोटो देख कर मुझे बहुत आकर्षण का अनुभव हुआ और मैंने उसे बार-बार देखा, और मैं उसमें सूक्ष्म आनन्द लेने लगा। उस आनन्द का विश्लेषण करने पर उसमें प्राणिक लक्षण एकदम स्पष्ट दीखे। यह ऐसा था मानों बातचीत करने और स्पर्श करने के गँवारू तरीक़ों ने अपने-आपको अधिक सूक्ष्म, अधिक शान्त हर्ष में बदल दिया हो; वह और कुछ नहीं बल्कि विलास के अधिक गँवारू रूपों की ही जड़ होगी। मैं एक या सवा घण्टे के बाद ही उसका विश्लेषण कर पाया।*

निस्सन्देह, तुम्हारा विश्लेषण एकदम सही था।

> *सेक्स का भ्रम चला क्यों नहीं जाता?*

मानव प्राण में इसकी कई जड़ें होती हैं। सेक्स में भयंकर दुराग्रह होता है। इसके अतिरिक्त, वैश्व भौतिक प्रकृति में इसकी इतनी आवश्यकता होती है कि जब मनुष्य इसे अपने से दूर धकिया भी देता है फिर भी, जब तक सम्भव हो, वह पलट कर उस पर आ ही जाता है।

> *एक सपने में मैं अपने एक रिश्तेदार के साथ था। फिर अधजगी हालत में मैंने किसी को दरवाज़े के क़रीब खड़े देखा। मैं एक झटके से उठ बैठा और मैंने उसे एक घूँसा मारा। घूँसा दरवाज़े पर जाकर लगा। मैं पूरी तरह से जग गया और मैंने पाया कि मेरा दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। मैंने अपनी नब्ज़ देखी—वह बहुत बढ़े हुए रक्तचाप की तरह धमक रही थी। दो-तीन मिनटों के बाद वह सामान्य हुई। कैसा अजीब-सा भ्रम कि रात के दो बजे कोई दरवाज़े पर खड़ा है!*

इसका कारण यह था कि अधजगी अवस्था में होते हुए भी चेतना दूसरे जगत् में थी और वहाँ की चीज़ें देख रही थी—ऐसा प्रायः होता है।
१७ जनवरी १९३५

> *एक और स्वप्न: मैं एक दोस्त के घर पर था। 'क' काला कोट पहने था, कोई और पूरी काली पोशाक पहने था और वहाँ एक काली बिल्ली थी। बिल्ली बार-बार काँटों की बाड़ पर कूदने की कोशिश कर रही थी और 'क' उसका पीछा कर रहा था। वह यहाँ-वहाँ उछल रही थी; मैं उनकी मदद के लिए गया। काली पोशाकवाला बाड़ पर से कूदा और ज़मीन पर गिर कर एकदम मर गया। मैं यह सोच कर उसके शरीर के पास गया कि शायद वह काँटेदार बाड़ ज़हरीली हो। लेकिन उस काली पोशाकवाले आदमी के शरीर का कुछ भी न बचा था, वह तो तार का गुच्छा भर रह गया था। जागने पर मैंने उसे बिजली से जल जाने के रूप में देखा। मैंने अपने सिर में गरमी का अनुभव किया।*

काली बिल्ली और काला कोट इत्यादि सभी चीज़ें प्रकति के अँधेरे भागों की कठिनाइयों का प्रतीक हैं। काली बिल्ली प्राण की कोई अँधेरी और अज्ञानी क्रिया है जिसे खुल खेलने नहीं दिया जा रहा था और जो "काँटेदार बाड़" पर उछल रही थी और जो बाड़ उसे उस पार जाने से रोक रही थी। काले कोटवाला आदमी भी उसी तरह अज्ञानी प्रभाववाला होगा जो बिजली के झटके से मर कर ऊर्जा में बदल गया।

> *ऐसा लगता है कि भ्रम का अधिकांश ग़ायब हो गया, और मुझे लगता है कि मैं पहले की अपेक्षा अब कहीं अधिक माँ की 'उपस्थिति' की भावना में रह सकता हूँ। शायद मेरे अन्दर का वह हिस्सा ऊपर उभर कर आ गया हो जिसने मेरी साधना में हमेशा अड़ंगे लगाये हैं, तब भी जब मैंने शान्ति और नीरवता का अनुभव किया। वह किसी आकार या सम्पर्क या किसी व्यक्ति के संवेदन के रूप में प्रकट होता है और मेरे ऊपर एक मोटा परदा डाल देता है। शायद मैंने कभी सच्चाई के साथ उस भाग को खदेड़ा नहीं और इसीलिए मेरे अन्दर का संघर्ष चलता ही चला जाता है और वह मेरी प्रगति को अटका देता है।*

हाँ; तुम जो कह रहे हो वह एकदम सही है।

> *रही बात काली बिल्ली के सपने की: इसका मतलब यह है कि काली बिल्ली और काली पोशाकवाला आदमी ज़रूर प्राण का कामुक भाग रहा होगा जिसे आजकल*

वश में रखा जा रहा है। लेकिन बिजली का धक्का लगने और उस आदमी के धरती पर गिर कर मर जाने और फिर "ऊर्जा में बदल जाने" का क्या अर्थ है?

जब कामुक-शक्ति के वर्तमान रूप पर विजय पा ली जाती है (वह गिर कर एकदम मर जाता है), तो वह शरीर में किसी भी उच्चतर ऊर्जा में बदल जाती है—वह प्राणिक हो, मानसिक हो या फिर आध्यात्मिक। क्योंकि वह मूलभूत भौतिक ऊर्जा होती है (जो बाक़ी सभी भागों की भौतिक अभिव्यक्ति को पोषित कर सकती है) जिसे 'प्रकृति' सेक्स के अपने उपयोगों के लिए शक्ति में बदल देती है।...

१८ जनवरी १९३५ —श्रीअरविन्द